चाहिए। इस वर्गीकरण का लक्ष्य समाज में शान्ति और समृद्धि बनाए रखना है। यहाँ पर वर्णित गुणों को दैवी कहा गया है, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति करते हुए प्राकृत-जगत् से मुक्त हो जाने के लिए मनुष्य को इनका अनुशीलन (सेवन) करना चाहिए। वर्णाश्रम व्यवस्था में संन्यासी को सब वर्ण और आश्रमों का गुरु समझा जाता है। ब्राह्मण प्रायः क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र का गुरु माना जाता है, परन्तु संन्यासी ब्राह्मण का भी गुरु है। संन्यासी का प्रथम गुण निर्भयता है। जो संन्यास ग्रहण करता है. उसके लिए आवश्यक है कि किसी से सहायता की अपेक्षा किए बिना एकमात्र भगवत्कृपा पर आश्रित रहे। यदि उसके मन में यह विचार उठता हो कि ''पारिवारिक सम्बन्धों को त्याग देने पर मेरी रक्षा कौन करेगा?'' तो उसे संन्यास लेना ही नहीं चाहिए। उसे यह पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने एकदेशीय परमात्मा रूप में हृदय में नित्य रहते हैं, वे सब कुछ देखते हैं और पूर्ण रूप से जानते हैं कि कौन क्या करना चाहता है। यह दृढ़ निश्चय निरन्तर बना रहे कि श्रीकृष्ण परमात्मारूप से अपने शरणागत जीव की सदा रक्षा करेंगे। मन में विचार करे, ''मैं घोर वन में भी अकेला नहीं हो सकता, सब प्रकार से मेरी रक्षा के लिए श्रीकृष्ण निरन्तर मेरे साथ हैं।'' इसी विश्वास का नाम **अभयम्** है। संन्यासी की मनोवृत्ति ठीक ऐसी ही होनी चाहिए। इसके बाद, **सत्त्वसंशुद्धिः** (अन्तःकरण की शुद्धि) करनी चाहिए। संन्यासी के लिए अनेक विधि-विधान पालनीय हैं। सबसे पहले, उस के लिए किसी भी स्त्री से कोई अंतरंग सम्बन्ध रखने का पूर्ण रूप से निषेध है। अधिक क्या, संन्यासी के लिए तो एकान्त में स्त्री-सम्भाषण भी वर्जित है। श्रीचैतन्य महाप्रभु आदर्श संन्यासी थे। पुरीधाम में भक्त स्त्रियाँ वन्दना तक के लिए उनके पास नही जा सकती थीं। उनके लिए दूर से ही प्रणाम करने की आज्ञा थी। यह स्त्रीवर्ग से द्वेष का द्योतक नहीं है, इससे तो केवल संन्यासी के लिए स्त्रियों से निकट सम्बन्ध रखने का निषेध है। अन्तःकरण की शुद्धि अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार शास्त्रीय आचरण करने से होती है। संन्यासी के लिए स्त्रियों से निकट का सम्बन्ध रखने और धनसंचय करने का पूर्ण निषेध है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं सब प्रकार से आदर्श संन्यासी थे। उनके जीवन-चरित्र से ज्ञात होता है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में वे अत्यन्त कठोर थे। उन्हें श्रीभगवान् का सबसे करुणामय (महावदान्य) अवतार कहा जाता है—अधम से अधम जीव का भी उन्होंने उद्धार कर दिया; परन्तु वे भी स्त्रियों के सम्बन्ध में संन्यास-आश्रम के विधि-निषेध का कठोरता से पालन किया करते थे। एक बार छोटे हरिदास नामक उनके एक अंतरंग पार्षद ने किसी कारणवश एक युवती के मुख को काम-भावना से देख लिया। श्रीचैतन्य महाप्रभु इस विषय में इतने कठोर थे कि उन्होंने उसे तत्काल अपने पार्षदों के वर्ग से निष्कासित कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने इस संदर्भ में कहा है, ''जो संन्यासी है, अथवा माया के बन्धन से मुक्त होकर और दैवी प्रकृति में स्थित होकर भगवद्धाम को प्राप्त होना चाहता है, उसके लिए विषय-वस्तुओं और स्त्रियों को भोगने की तो बात ही क्या, इन्द्रिय-तृप्ति के लिए इन